टी. वी. और बच्चे

❑ स्वयं प्रकाश

बच्चों के बीच टेलीविजन की जो स्थिति है, उसे लेकर हम अक्सर शिकवे-शिकायत करते रहते हैं । लेकिन इसका कोई हल या विकल्प हमारे पास नहीं है और न ही बच्चों पर हम 'टी. वी. सेंसर' लागू कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में क्या ये प्रलाप करते रहना उचित है ? अन्यथा हमें टी. वी. और बच्चों के रिश्तों की संवेदनशीलता और अंतरंगता का कोई आलोचनात्मक, विकल्पोन्मुख और विवेक सम्मत विश्लेषण करना चाहिये । प्रस्तुत लेख इसी प्रसंग में है ।

टीवी द्वारा एक बहुत बड़ी दुनिया को हमारे चाक्षुष अनुभव का हिस्सा बना देना एक हचमचा देने वाला अनुभव सिद्ध हुआ है। खासकर बच्चों के लिए । वे चकित, विस्मित हुए, विमूढ़ भी और अब भी लगभग विस्फारित नेत्रों से संसार को देख रहे हैं । इतनी साफ चिकनी चौड़ी सड़कें, इतने सुन्दर बगीचे, ऐसे भव्य मकान, ऐसी शानदार कारें, ऐसा आरामदायक रहन-सहन, इतने लजीज खाने, ऐसा बढ़िया स्वास्थ्य, इतने सुगठित शरीर, ऐसी विमुग्धकारी सुन्दरता और ऐसा स्वर्गिक ऐश्वर्य !! यह पहले किसने-कब देखा था ? यह है भी, इसकी भी किसे कल्पना थी ? ऐसा संभव है, यह भी किसने सोचा था ? और क्या उससे बेहतर भी कुछ हो सकता है ? कहां है उसमें दरिद्रता, क्रूरता, बर्बरता, रोग, जड़ता, हिंसा, रंगभेद, अमानवीयता, भूख, अपमान, वह सब गलाजत जिसे हम रात-दिन चारों तरफ देखते-सुनते हैं ? वाह ! जीवन हो तो ऐसा हो।

जाहिर है टीवी के इस अर्द्धसत्य ने बच्चों के सपने और उनके मॉडल बदल दिए हैं । उनके लिए जीवन शैली अब उनकी आंखों के सामने है । अविश्वास करने का कोई कारण ही नहीं है। श्रेष्ठ जीवन की उनकी परिकल्पना को एक अप्रत्याशित उड़ान मिल गई है । जाहिर है यह जो लुभावनी दुनिया टीवी ने बच्चों के सामने खोल दी है, उसे हासिल करने की न उनमें सामर्थ्य है न संभावना। और पिताजी के रास्ते पर चलकर तो हर्गिज नहीं । किन्तु लिप्सा एक अनबुझी प्यास है । इसलिए दौड़, गति, जल्दी, फटाफट, अधैर्य, मूल्यहीनता या फिर नकल, कुंठा, अजनबीपन, नशा, हिंसा। इस सूरते हाल में सादगी का स्थान विलासिता ने, सार्थकता का स्थान सफलता ने, श्रम के संगीत का स्थान उपभोग के स्वाद ने, स्थिरता का स्थान क्षणवाद ने, सुंदरता का स्थान स्मार्टनेस ने, ज्ञान का स्थान सूचना ने, विद्वता का स्थान चालूपने ने, योग्यता का स्थान तिकड़म ने, स्वास्थ्य का स्थान चमक दमक ने, सहभागिता का स्थान स्पर्धा ने, बचत का स्थान निवेश ने और सामूहिकता का स्थान इकलखुरेपन ने लिया है । यह एक बहुत बड़ा वेल्यू शिफ्ट (मूल्य-संतरण)है, जो हमारे बावजूद और हमारे देखते देखते हमारे समाज में घटित हो गया है । मैं यह नहीं कहता कि यह सब कुछ टीवी की वजह से हुआ है, पर इतना जरूर है कि टीवी इस परिवर्तन का एक अत्यंत असरकारक उपकरण रहा है ।

जाहिर है समाज में सब बच्चे नहीं हैं। और यह भी सच है कि सारा हिन्दुस्तान टीवी नहीं देख रहा है । इसलिए टीवी प्रभाव ने हमारे समाज को मोटे तौर पर दो हिस्सों में बांट दिया है । एक हिस्सा भारत हो गया है, दूसरा इंडिया । भारत में हिंदी है या देसी भाषाएं और इंडिया में अंग्रेजी । भारत में टूटी स्लेट पर लिखा दो का पहाड़ा और इंडिया में कम्प्यूटर (जो आजकल दूसरी तीसरी कक्षा से शुरू हो जाता है और जिसे इंडिया वाले साक्षरता का एक हिस्सा मानते हैं) भारत में दोना-पत्तल, दाल-भात, नीम-पीपल हैं, इंडिया में पीजा-बर्गर-हर्बल-इथेनिक ।

दुर्भाग्य से कई लोग शरीर से बड़े हो जाते हैं पर मन से बच्चे ही होते हैं । ये बच्चे-अभिभावक आने वाली दुनिया में अपने बच्चों को किसी से पीछे न रखने की भावना से बच्चों की लिप्साओं को हवा देते हैं और नैतिकता को ताक पर रखकर किसी भी तरह बच्चों को वह सब मुहैया करवाना चाहते हैं, जिससे उनकी जगह इंडिया में सुरक्षित बनी रहे - कहीं वे भारत में फेंक न दिये जायें। इसलिए वे रात-दिन बेईमानियां करके भी इंडिया की ऊपरी सतह एन आर आई में ठंसने की कोशिश करते हैं । पहले बेहतरीन छुट्टियां मनाने का ख्वाब मसूरी शिमला तक जाता था अब फार्म हाउस, गोल्फ कोर्स और विदेशी कारों तक जाता है । बच्चे अभिभावक इसके लिए विदेशों की दलाली और देशद्रोह तक करने को तैयार हैं (करते दिखाई दे रहे हैं) ।

इससे एक अजोड़ अलगाव की भावना पैदा होती है । इसके बाद न भारत का पानी अच्छा लगता है, न भारत का कानून । यदि बच्चों को जंचा दिया गया कि बेहतरीन जीवन का यही मतलब है तो उसके सारे प्रयास इसी को प्राप्त करने में एकाग्र हो जाते हैं ।

लेकिन टी वी के अर्ध सत्य ने परिणाम बताया है, प्रयत्न नहीं और परिणति तो हरिगज नहीं । वह उपलब्धियों का बखान करता है, उन्हें प्राप्त करने के लिए कैसा कितना संघर्ष किया गया, यह कभी नहीं बताता। और उपलब्धि के बाद इन्सान का क्या हाल होता है, यह तो हर्गिज नहीं बताता । और उपलब्धि भी वह उसी को मानता है जिससे उसका कुछ फायदा हो, कुछ व्यापारिक लाभ हो । उसका माने किसका ? टीवी वालों का। टीवी वाले कौन ? वे व्यापारी जिन्हें किसी भी तरह अपना माल बेचना है । दो उदाहरण। एक गिनीज बुक आफ वर्ल्ड रेकार्ड ! क्या आपको नहीं लगता कि इनमें से अनेक विशुद्ध पागलपन हैं और मानवीय क्षमता का असीमित दुरुपयोग? दूसरा ईराक युद्ध में स्कड मिसाइलों की आतिशबाजी। क्या वे वाकई अचूक थीं? क्या युद्ध दिलफरेब हो सकता है ? अब पता चल रहा है कि वहां अमरीका द्वारा यूरेनियम हथियार प्रयुक्त किए गए थे ।

टी.वी पर विश्व सुन्दरी के परहेज, खिलाड़ियों के व्यायाम, कलाकारों के रियाज, व्यापारियों के तनाव, डाक्टरों की व्यस्तता और शोधकर्ताओं की धुन नहीं बताई जाएगी। उस पर धनवानों की कंजूसी, धर्माचार्यों का टुच्चापन, समाजसेवियों का व्यभिचार, पत्रकारों के झूठ, विकसित समाजों के अंधविश्वास, उद्योगपतियों की बर्बरता और बुद्धिजीवियों की जहालत के बारे में भी नहीं बताया जाएगा । ऐसा करने के विरुद्ध सबको कानूनी संरक्षण प्राप्त है ।

इसलिए बच्चा अधर में है । सपने अकूत, क्षमता शून्य । मां-बाप जाहिल (सारे टीवी सीरियल बड़ों के साथ बदतमीजी करना सिखाते हैं) । उपभोग उन्हें अधिकार लगता है और मितव्ययता मूर्खता । सादगी पाखंड और सदाचार पिछड़ापन ।

जाहिर है लिप्साग्रस्त मनुष्य इकलखुरा ही हो सकता है । संवेदना, सहानुभूति, समूह कर्म उसे अपने रास्ते की बाधा लगते हैं। ऐसे बच्चे जब बड़े होंगे तो एक अशान्त, उग्र और तनावग्रस्त समाज ही बनाएंगे। लेकिन तब वहां न उन्हें कोई आशीर्वाद देने वाला होगा न कोई आंसू पोंछने वाला। हो सकता है तब आशीर्वाद देना पिछडापन और आंसू पोंछना असभ्यता माना जाने लगे । कुछ-कुछ लक्षण तो इसके दिखाई देने शुरू हो गए हैं । तब मृत्यु उसकी एकमात्र संभावित मित्र होगी (और मांगने पर आनन्दप्रद मृत्यु दी भी जायेगी) और संसार प्रतिद्वंद्वी । मुनाफाखोर टीवी वाले बड़े इंतजाम के साथ हमारे लिए भविष्य की एक बीमार दुनिया की रचना कर रहे हैं ।

आप सिर पीटिये ! कोसने मात्र से सब कुछ ठीक हो जाता हो तो और बात है, पर यह तय है कि यह जो आया है – टीवी यह जाने के लिए नहीं आया है । आप इंटरनेट को भी नहीं रोक पाएंगे। विरोधाभास नहीं है कि एक तरफ आप सूचना के अधिकार के लिए संघर्ष करते हैं और दूसरी तरफ संचार क्रांति के विरुद्ध विश्वामित्र बनने की चेष्टा करते नजर आते हैं ।

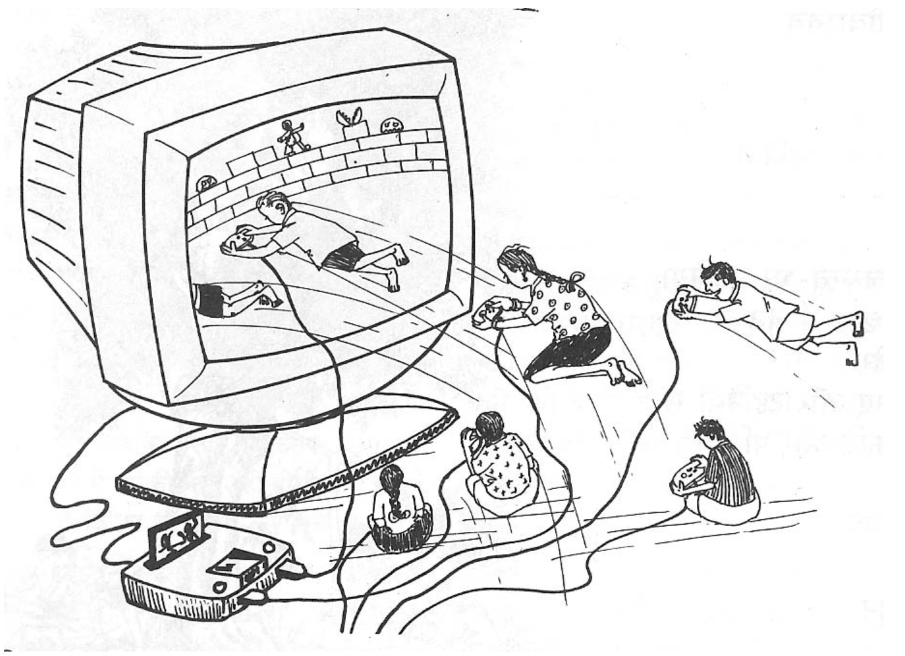
लेकिन बात का एक दूसरा पहलू भी है ।

क्या टीवी का यह अंधाधुंध विरोध हमें उन्हीं लोगों की पांत में नहीं खड़ा कर देता, जो सोचते हैं कि टी वी को इसलिए बन्द कर देना चाहिए, क्योंकि यह विदेशी संस्कृति का प्रचार करता है और इसमें अश्लील और कामुक कार्यक्रम दिखाए जाते हैं । (और हा हंत! अब तो कुछ लोगों को इसमें 'भारतीय संस्कृति' को नष्ट करने के लिए चालू ईसाई धर्म का षड़यंत्र भी नजर आने लगा है!) क्या ये वही लोग नहीं हैं जो सोचते थे/हैं कि सिनेमा से समाज में हिंसा फैलती है ? क्या वे इन्हीं के पूर्वज नहीं थे जो सोचते थे कि रेल में बैठने से औरतें बिगड़ जाएंगी? और कि ज्यादा पढ़ने से आदमी का दिमाग खराब हो जाता है ? क्या ये वही नहीं है, जो सुबह चार बजे उठकर ठंडे पानी से नहाना दुनिया का सबसे बड़ा पुरुषार्थ समझते हैं ? फिर भले दिन भर सोते रहें ! क्या ये वही चुटियाधारी नहीं हैं, जिन्होंने 'तमस' के विरोध में प्रदर्शन किए थे और 'आधा गांव' को पाठ्यक्रम से हटवाया था ? क्या ये वही पोंगे नहीं हैं, जो ब्राह्मणों के पैर धोना और विधवा को पति की चिता पर जिंदा भूनना धर्म समझते हैं ? क्या ये वहीं गर्व से कहो नहीं हैं, जो घोर अधार्मिक सामाजिक असमानता को पूर्वजन्म के कर्मों का फल बताते हैं और हमारे देश को कभी उस स्वर्गिक प्रदेश में नहीं खुलने देना चाहते जहां चित्त भय शून्य हो और माथा उठा हुआ ?

विज्ञान के अवसरों का, आविष्कारों का, मरहलों का विरोध करना हम को शोभा नहीं देता । क्यों हम अपने बच्चों को जीवन और जगत की सच्चाइयों से अनभिज्ञ रखना चाहते हैं ? क्यों हमें अपनी जनता पर विश्वास नहीं है ? क्यों हमें अपने आप पर विश्वास नही है ? यदि इतना भी हम ने नहीं सिखाया तो फिर क्या सिखाया ? क्या हमारे बच्चे बड़े नहीं होंगे ? हमारी सोहबत में भी? क्या हमारी जनता कभी सयानी नहीं होगी ? ध्यान से देखिए तो यह सयानापन उन्होंने दिखाना शुरू भी कर दिया है । टी वी की आरंभिक लपक और पागलपन खत्म हो चुका है । मेरे अनुभव क्षेत्र में बच्चों का टी वी देखना निरंतर कम होता जा रहा है । उन्हें सभी फिल्में देखी हुई सी और सभी सीरियल बकवास और उबाऊ लगते हैं । वे टीवी कार्यक्रमों की अपेक्षा विज्ञापन ज्यादा ध्यान से देखते हैं। वहां कम से कम समय में एक संपूर्ण कहानी होती है, कभी कभी मर्मस्पर्शी भी। उसे बार-बार देखा जा सकता है । और विज्ञापनों पर अपरंपार पैसा खर्च करने के बावजूद, व्यापार की हकीकत यह

है कि बहुराष्ट्रीय कंपनियां आ नहीं रहीं, जा रही हैं । विदेशी निवेश कम हो रहा है । अप्रवासी भारतीयों के देश प्रेम की कलई खुल चुकी है । एन आर आई को नॉन रिलायबल इंडियंस कहा जाने लगा है। मीडिया गुरुओं की सिद्ध सेल्समेनशिप को अंगूठा छाप भारतीय उपभोक्ताओं ने अंगूठा दिखा दिया है । निरमा, रसना, वाडीलाल और बीकाजी हजारों की तादाद में उभरे हैं । भारत के कंप्यूटर इंजीनियर्स तथा अन्य नौजवान उद्यमियों ने बहुराष्ट्रीय कंपनियों को ऐसी जोरदार टक्कर दी है कि बेचारे हिंदी में विज्ञापन करने और सेशे बेचने पर मजबूर हैं ।

और मैं पूछता हूं ? ये बच्चे कितनी तेजी से बड़े हो रहे हैं। क्या आपको नहीं लगता कि बेहूदा और बेतुकी वर्जनाओं वाली मानसिकता ने ही अभी तक हमारे यहां यौन शिक्षा शुरू नहीं होने दी ?



आप सिर पीटिये ! कोसने मात्र से सब कुछ ठीक हो जाता हो तो और बात है, पर यह तय है कि यह जो आया है - टी वी, यह जाने के लिए नहीं आया है । आप इंटरनेट को भी नहीं रोक पाएंगे। विरोधाभास नहीं है कि एक तरफ आप सूचना के अधिकार के लिए संघर्ष करते हैं और दूसरी तरफ संचार क्रांति के विरुद्ध विश्वामित्र बनने की चेष्टा करते नजर आते हैं ।

नहीं, बच्चों की अहम्मन्यता का, उद्दंडता का, असहिष्णुता का, अवज्ञा का, गति प्रेम का कारण कहीं और ढूंढना होगा । टीवी पर सब थोपने से काम नहीं चलेगा । यह बताइए कि आपकी परंपरागत जीवन शैली में आज के बच्चों के काम का क्या है ? अद्धे, पउवे, ढोंचे ? रटन्त विद्या ? संगणन कला ? जिह्वाग्रता? योर्स मोस्ट फेथफुली वाली विक्टोरियन अंग्रेजी ? जीवन भर आप सादगी से रहें और दूसरी के सुखों को पाप की कमाई बताकर भी उसके प्रति ललचाते भी रहें। जीवन भर 'ब्रह्मचर्य' जैसी प्रकृति द्रोही शैली की प्रशंसा के गीत गाते रहे और चोरी छिपे कामुक पुस्तकें पढ़ते रहें और धातु दौर्बल्य, शीघ्रपतन और स्वप्न दोष का इलाज करवाते रहें। उन कमजोर और डरपोक लोगों को महात्मा समझते रहें, जो स्त्री के स्पर्श मात्र से पतित-स्खलित हो जाते थे। जीवन भर अपरिग्रह का उपदेश देते रहे और जमीन के अनुपजाऊ टुकड़ों के लिए पीढ़ी-दर-पीढ़ी मुकदमेबाजी करते रहें । जीवन भर औदार्य, सौहार्द और सहिष्णुता का ढोल पीटते रहें और म्लेच्छों को मोहल्ले में मकान दिलवाने से कतराते रहें । दलितों, अछूतों, नीची जातवालों को घर बुलाकर चाय पिलाते रहें, लेकिन उनके जूठे कप अलग रखते रहें । भजन किया सत्य अहिंसा स्वदेशी का और विकास के लिए रास्ता पकड़ा पूंजीवादी । उपदेश देते रहे निरस्त्रीकरण का और बगैर वाजिब कारण पांच-पांच परमाणु विस्फोट कर डाले । पाखंड से लबालब ऐसी जिंदगी में हमारे बच्चों के लिए क्या है ? क्या नसीहत दे सकते हैं हम उन्हें ? हम आखिर सहज क्यों नहीं हो पाते ? सुखमय जीवन हमें पाप क्यों लगता है? दरिद्रता से हम नफरत क्यों नहीं कर पाते ? गरीबी पर गर्व कैसा? गंदगी में लिथड़ना कौन सी महानता है ? ईमानदारी से कहिए, कौन पिता अपने बच्चों के लिए वैसा ही जीवन चाहता है जैसा उसका था ? कौन मां अपनी बेटी को वही जीवन देना चाहती है, जैसा उसने भुगता ? कभी-कभी तो मुझे शक होता है कि कहीं हम अपने बच्चों से मन ही मन ईर्ष्या तो नहीं करते ?

एक बात हमें साफ समझ लेनी चाहिए । बच्चों का आई क्यू हमसे कम नहीं है, ज्यादा ही होगा । वे देख रहे हैं । टीवी से ज्यादा वे हमें देख रहे हैं हमारे आचरण को । समझ आते ही वे इसकी समीक्षा करेंगे और संस्कार ग्रहण करेंगे । टी वी उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता, बशर्ते आपकी आपसी समझदारी के रास्ते साफ और दोस्ताना हों ।◆